IJISEM
INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIONS IN SCIENCE ENGINEERING AND MANAGEMENT



Check for updates

OPEN ACCESS

Volume: 4

Issue: 1

Month: March

Year: 2025

ISSN: 2583-7117

Published: 31.03.2025

Citation:

उज्जवल कुमार, डॉ. अखिलेश कुमार विश्वकर्मा "योगवसिष्ठ में कर्मयोग और ज्ञानयोग का परस्पर संबंध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" International Journal of Innovations in Science Engineering and Management, vol. 4, no. 1, 2025, pp. 408-412

DOI:

10.69968/ijisem.2025v4i3408-412

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Share Alike 4.0 International License

# योगवसिष्ठ में कर्मयोग और ज्ञानयोग का परस्पर संबंध : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

**उज्जवल कुमार[1], डॉ. अखिलेश कुमार विश्वकर्मा[2]**

*[1] पीएच.डी.शोधार्थी, लकुलिश योग विश्वविद्यालय,ujjwalkumar5343@gmali.com*

*[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, लकुलिश योग विश्वविद्यालय*

**Abstract**

*इस शोध पत्र के द्वारा योगवसिष्ठ में कर्मयोग एवं ज्ञान के परस्पर संबंध का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। आज के समय में साधक कर्म योग एवं ज्ञान योग को अलग-अलग मानते है, परन्तु योगवसिष्ठ के अनुसार कर्म योग एवं ज्ञान योग को आत्मज्ञान एवं मोक्ष प्राप्ति का एक पूरक साधन है। इस शोध पत्र के यह स्पष्ट किया गया है, कि कर्म योग में निष्काम कर्म के द्वारा चित शुद्ध करता है जो ज्ञान योग के साधन के लिय आवश्यक है। वहीं ज्ञान योग द्वारा विवेक-वैराग्य के माध्यम से साधक के समक्ष सत्य ज्ञान प्रदर्शित कर वासना रहित कर्म अर्थात निष्काम कर्म के लिय प्रेरित करती है। जो आत्म ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति के अति अतिमहत्वपूर्ण है।*

***मुख्य शब्दः*** *योगवसिष्ठ, कर्मयोग, ज्ञानयोग, अद्वैत, मोक्ष, परस्पर संबंध*

## INTRODUCTION

योगवसिष्ठ भारतीय दार्शिनक परम्परा का एक बहुत महत्वपूर्ण एवं अनुपम ग्रंथ है। योगवसिष्ठ मुख्य रूप से महर्षि वसिष्ठ और श्री राम के बिच संबाद के रूप में है। जिसमे जीव, जगत, माया, कर्म, ज्ञान, ब्रहम एवं मोक्ष का वर्णन किया गया है। योगवसिष्ठ में संसार के दुखो से निवृति एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिय कर्म योग और ज्ञान योग को विशेष स्थान दिया गया है। योगवसिष्ठ को कर्म योग एवं ज्ञान योग अलग अलग न देख कर एक दुसरे के पूरक बताया गया है। जहाँ कर्म योग में निष्काम कर्म के द्वारा जीवन के कर्तव्यों को समत्व एवं निष्काम भाव से करने पर बल देते है, वहीं ज्ञान योग के द्वारा आत्मज्ञान की अनुभूति कर संसार के बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने में एक सुदृढ़ मार्ग प्रस्तुत करता है। त्रिशिखि ब्राहमण उपनिषद में ज्ञान योग एवं कर्म योग के पूरकता का वर्णन करते हुए कहते है कि

**यस्योक्तलक्षणे योगे द्विविधेऽप्यव्ययं मनः । स याति परमं श्रेयो मोक्षलक्षणमंजसा।। त्रिशिखि० उप०-मन्त्र भाग-27-28**

**अर्थात** इस प्रकार से जो मनुष्य दोनों प्रकार के योग का विकाररहित भाव से अभ्यास करता है वह शीघ्र ही मोक्षरूपी परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है।(त्रिवेदी, 2024,पृ- 106–107) यहाँ दोनों प्रकार के योग से तात्पर्य कर्म योग एवं ज्ञान योग से लिया गया है।

**कर्म योग की अवधारणा कर्मयोग का अर्थ एवं स्वरूप कर्म का अर्थ-**

कर्म शब्द की उत्पत्ति कृ धातु में 'मन्' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका मुख्य अर्थ स्पंदन, क्रिया, कर्मकांड आदि से है।

**कर्म का परिभासा-** योगवसिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण में महर्षि वसिष्ठ कर्म की परिभासा का वर्णन करते हुए कहते है कि-

**यदा स्पन्दैकधर्मत्वात्कर्तुर्या शून्यशंसिनी। आधावति स्पन्दफलं तदा कर्मेत्युदाहृता" ।॥3/96/21॥ (वाल्मीकि,1985, पृष्ट-600)**

अर्थात जब भी किसी साधक के मन किसी भी प्रकार की इच्छा या कोई स्पंदन उत्पन्न होता है और इसी स्पंदन(हलचल) के प्रभाव में आकर, जो उसके प्राप्त करने के लिय प्रयास किया जाता है, तो इस प्रयास की पूरी प्रक्रिया को कर्म कहते है।

कर्म इस सृष्टि और मानव जीवन का एक एसा अभिन्न अंग है, जिसके बिना इस जगत में कोई भी मनुष्य क्षण मात्र भी नही रह सकता है। लक्ष्मण नारायण गर्दे अपने पुस्तक में वर्णन करते हुए कहते है कि "संसार में कोई भी एसा मनुष्य नहीं है, जो पलभर भी बिना किसी प्रकार का काम किय रह सके। यह तो प्रकृति का नियम ही है, कि मनुष्य हर दम किसी न किसी काम में लगा रहता है- काम से वह अपना पिंड नहीं छुड़ा सकता।"(गर्दे, 1912, पृ. 89)

इस संसार में कर्म को बंधन एवं मोक्ष का मुख्य कारन माना गया है। इसका मुख्य वजह यह है कि मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म राग एवं फल की अपेक्षाओ से पूर्ण होता है, जो शुभ या अशुभ फल प्रदान करती है। जिसके कारण मनुष्य इस संसार में बार बार जन्म लेना पड़ता है। चन्दन राज मेहता अपनी पुस्तक में वर्णन करते हुए कहते है कि "जैन दर्शन के अनुसारं जीव की राग-द्वेषात्मक प्रवृति से कर्मों का बन्ध होता है।"**(**मेहता,1983)

वहीं कर्म बंधन से मुक्ति के लिय शंकराचार्य भाष्य इशादी नौ उपनिषद वर्णन करते हुए कहते है कि

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ईशा०,मंत्र-2॥"(गीता प्रेस,2010, पृ. 28)**

अर्थात इस संसार में जो भी मनुष्य है, उन्हें शास्त्रों के अनुसार बताये गये कर्मो को करते हुए पुरे सौ साल तक जीवीत रहने की इच्छा करनी चाहिए। अगर कोई मनुष्य इस प्रकार से कर्म करता है तो वह कर्मो के बंधन में लिप्त न होकर कर्म के बंधन से मुक्त हो जाता है। स्वामी आत्मानन्द मुनि अपने पुस्तक गीता दर्पण के माध्यम से कर्म बंधन मुक्ति के लिय गीता के श्लोक का वर्णन करते है

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"**

**गीता दर्पण अथार्थ भगवद्गीता पर -2.47"**
**( आत्मानन्द मुनि,2000)**

**अर्थात** श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि इस संसार में जो भी मनुष्य है उसका अधिकर सिर्फ कर्म करने में है, उसके फल में नही। इसलिय इस संसार में सभी मनुष्य को अपने अपने कार्य के प्रति निष्ठा रखते हुए कर्म फल की इच्छा से रहित रेट हुए कर्म करना चाहिए।

यहाँ श्री कृष्ण वासना रहित कर्म अर्थात निष्काम कर्म का वर्णन करते है। कर्म-बंधन से मुक्ति के लिय कर्म योग के माध्यम से निष्काम कर्म को मुख्य साधन माना गया है।

## *निष्काम कर्म और चितशुधि*

भारतीय दर्शन के महान ग्रंथ योग दर्शन, योगवसिष्ठ, गीता आदि जैसे प्रमुख ग्रंथो में निष्काम कर्म को चित शुधि का एक मुख्य साधन माना गया है। श्री कृष्ण गीता में वर्णन करते हुए कहते है कि

**कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मश्रुद्धये ॥5/11॥ (Bhaktivedanta, 1972, p. 209)**

**अर्थात** जब भी कोई साधक अपने शरीर, मन, बुधि और इन्द्रियों के द्वारा किए जाने वाले कर्म में आसक्ति को छोड़ देता है तो उस से चित की शुधि होती है। वहीं महर्षि पतंजलि योग दर्शन में क्रिया योग को चित शुधि का मुख्य साधन बताते हुए कहते है कि

**समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च। योगसूत्र 2.2 (गोयन्दका, 1931, पृ. 44)**

**अर्थात** जब मनुष्य क्रियायोग(साधक ताप,स्वाध्याय) मानसिक,शारीरिक से पालन कर लेता हो मनुष्य के अविद्याओं का नाश हो जाता है और मन कैवल्य के लिय तैयार हो जाता है। इस प्रकार कर्म योग में निष्काम भाव से किए गये कर्म चित शुधि का मुख्य साधन के रूप में है। जो मनुष्य को ज्ञान एवं मोक्ष की प्रप्ति के लिय अग्रसर करती है।

### ज्ञानयोग की अवधारणा

## *ज्ञानयोग का स्वरूप*

भारतीय परम्परा के अनुसार ज्ञान योग आत्म एवं ब्रहम के स्वरूप को जाननें का प्रमुख साधन है। ज्ञान योग का मुख्य उदेश्य अविद्या/अज्ञान को समाप्त कर सत्य के स्वरूप को जानने में और समझने में मदद करना है। इस संसार में दुःख का मुख्य कारण अज्ञान एवं अविद्या है। अविद्या के कारण ही मनुष्य अनित्य को नित्य, असत्य को सत्य मान लेते है, जो मनुष्य के दुःख का मुख्य कारन बन जाती है।

**इयं संसारसरणिर्वहत्यज्ञप्रमादतः ।**
**अज्ञस्योग्राणि दुःखानि सुखान्यपि दृढानि च**
**||6/1/6/33||**

अर्थात यह संसाररूपी प्रवाह अज्ञानी की ही मूर्खता से चल रहा है। अज्ञानी को ही घोर दुःख-सुख होते हैं।"(अत्रे,1957, पृष्ट-174) ज्ञान योग में विवेक, वैराग्य आदि प्रमुख साधन है, जिसके माध्यम से इस संसार में उत्पन्न होने बाले अज्ञान आदि को समाप्त कर मनुष्य सत्य और आत्मज्ञान की और आगे बढ़ता है। योगवसिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ इस संसार सागर से पर उतरने का एक मात्र साधन गया है, ज्ञान के अलावा और दूसरा कोई साधन नही है।

**विवेक-वैराग्य-** विवेक-वैराग्य को ज्ञान योग का प्रथम और प्रमुख स्तंभ है, जिससे ज्ञान योग का आरंभ होता है। "जब कोई सामान्य मनुष्य किसी साधू, ज्ञानी एवं महात्मा आदि का लगातार संगत करता है, तो उसमे विवेक उत्पन्न होता है।"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 11, पृ. 149) जब किसी मनुष्य में विवेक उत्पन्न होता है, तो इस संसार में स्थित नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य के बिच भेद को समझने के योग्य हो जाता है, जिसके पश्चात साधक के मन में अनित्य, असत्य विषयों के प्रति वैराग्य की भावन उत्पन्न हो जाती है। महर्षि वसिष्ठ कहते है, कि

**ते महान्तो महाप्राज्ञा निमित्तेन विनैव हि। वैराग्यं जायते येषां तेषां ह्यमलमानसम् ।॥2/11/24॥**

**अर्थात** "जिनको बिना निमित्त केवल विवेक से ही वैराग्य उत्पन्न होता है, वे ही महात्मा है, वहीं महाबुद्धिमान् हैं और उनका मन निर्मत होता है।"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 11, पृ. 146) ज्ञान योग में विवेक वैराग्य को आत्माज्ञान और मोक्ष को पाने का सबसे प्रमुख कड़ी के रूप में दर्शाया गया है। "इस संसार को विवेकयुक्त बुद्धि से जैसा है, वैसा जानकर और तन्मयी बुद्धि से त्यागकर जैसे बन्धन रहित गज अपने अभीष्ट स्थान पर जाते हैं, वैसे ही दुःखमय संसार बंधन से रहित हो विवेकीजन परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 11, पृ.147) इस प्रकार आत्मज्ञान एवं मोक्स्ग की प्राप्ति के लिय विवेक-वैराग्य का स्थान बहुत ही प्रमुख है।

## *आत्मज्ञान और मोक्ष*

आत्मज्ञान और मोक्ष को ज्ञान योग का सबसे अनितं का लक्ष्य बताया गया है। विवेक-वैराग्य के बाद जब मनुष्य का मन निर्मल होता है तो मनुष्य स्वयं में धीरे-धीरे इस्थित होना शुरू हो जाता है, जो मनुष्य को और नही सूक्ष्मता की ओर ले जाता है। प० राजाराम प्रोफ़ेसर आत्मज्ञान का वर्णन करते हुए कहते है कि

**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोत्रव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् । 2.4.5 बृह० उप०**

अर्थात "आत्म ही मुख्य रूप से दर्शन करने योग्य है, इसके किय सबसे पहले श्रुति से उसका श्रवन करो, फिर युक्ति से उसका मनन करो और फिर चित में उसको एकाग्र करो। इसको जान लेनें पर और कुछ जानन शेष नही रह जाएगा।"(राजाराम, 2000, पृ. 113–115) इस प्रकार आत्मज्ञान के माध्यम से साधक को स्वयं के स्वरूप का भान होता है। यही स्वयं का भान आगे चलकर और भी दृढ हो जाता है, मोक्ष का कर्ण बनती है।

**कर्मयोग एवं ज्ञानयोग का परस्पर संबंध**

अगर हम योगवसिष्ठ में कर्म योग एवं ज्ञान योग की बात करें तो ये साधन अलग-अलग है, परन्तु लक्ष्य दोनों का एक सामान है। योगवसिष्ठ के मुमुक्षुत्व प्रकरण में महर्षि वसिष्ठ राम जी को उपदेश देते हुए कहते है कि बीना पुरुषार्थ(कर्म) के ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती, और ज्ञान एक एसा साधन है, जो मनुष्य को कर्म फल की आसक्ति से मुक्त कर देता है। महर्षि वसिष्ठ कहते है कि

**शास्त्रौः सदाचरविजृम्भितदेशधर्मैर्यत्कल्पितं फलमतीव चिरप्ररूढम् । तस्मिन् हृदि स्फुरति चोपनमेति चित्तमङ्गावली तदनु पौरुषमेतदाहुः ।॥26/40॥**

अर्थात अतिप्रसिद्ध शास्त्रों से प्रमाणित जो सज्जनों को आचार से चित्त की शुद्धिरूप या ज्ञानरूप फल मिलता है, उसकी जब हृदय को अति उग्र अभिलाषा हो और उस अभिलाषा के अनुसार उधर चित्त जाय और उसके अनन्तर श्रवण वाणी, हस्तपाद आदि शरीर, श्रवण-मनन आदि में प्रवृत्त हो, उसी को पौरुष कहते हैं।"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 6, पृ. 130) इसका आशय यह है कि श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि के रूप में जो संगठित साधना उठती है, वही ज्ञान-प्राप्ति की दिशा में वास्तविक पुरुषार्थ है। वही योगवसिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ ज्ञान योग को आत्मज्ञान और मोक्ष के लिय मुख्य साधन मानते है। ज्ञान के पश्चात मनुष्य में कर्मो के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है। महर्षि वसिष्ठ कहते है कि "विवेकात्मा विचाररूपी दिव्यचक्षु

वाला है, वह पुरुष सम्पूर्ण पुरुषार्थ को प्राप्त करता है।"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 14, पृ. 165) इसका तात्पर्य है कि जब कोई मनुष्य ज्ञान योग के माध्यम से अपने विवेक ज्ञान को उजागर करता है तो उसे नित्य-अनित्य का भान हो जाता है, जो विचार के बाद अपने सभी कर्मो को आसक्ति से रहित निष्काम कर्म करता है। योगवसिष्ठ में ज्ञान योग एवं कर्म योग को पूरक माना गया है। महर्षि वसिष्ठ कहते है कि

**न यथा सन्निवेशान्तः सन्निवेशस्ततः पृथक् । तथा नभोर्थादि पृथङ्न परस्मान्मनागपि ॥6,2/3/11"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 14, पृ. 165)**

**अर्थात** महर्षि कहते है कि जिस प्रकार आकाश और दिशाएं एक दुसरे से भिन्न नही है। ठीक वैसे ही कर्म योग एवं ज्ञान योग एक दुसरे से अलग नही है। दोनों एक दुसरे के पूरक है और दोनों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। श्री कृष्ण गीता में कर्म योग एवं ज्ञान योग का वर्णन करते हुए कहते है कि

**सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥5.4॥**

**अर्थात** अज्ञानी ही भक्ति (कर्मयोग) को भौतिक जगत् के विश्लेषणात्मक अध्ययन (सांख्य) से भिन्न कहते हैं। जो वस्तुतः ज्ञानी हैं, वे कहते हैं कि जो इनमें से किसी एक मार्ग का भलीभाँति अनुसरण करता है, वह दोनों के फल प्राप्त कर लेता है।"(Bhaktivedanta Swami Prabhupada, 1972, p. 204) इस यह आशय है कि कर्म योग एवं ज्ञान योग दिनों का लक्ष्य परमपद को प्राप्त करना है।

अतः हम कह सकते है कि योगवसिष्ठ में कर्म योग एवं ज्ञान योग एक दुसरे से भिन्न नही बल्कि एक सम्बंधित है और एक दुसरे के बिना अधूरे है। इसमें जहाँ कर्म योग चित की शुधि करता है, वहीँ ज्ञान योग चित शुधि के बाद आत्मज्ञान एवं मोक्ष को प्राप्त करने में सहायता करते है।

### कर्म से ज्ञानयोग एवं ज्ञान से कर्मयोग की प्राप्ति

भारतीय दार्शिनिक परम्परा के अनुसार कर्म योग एवं ज्ञान योग एक दुसरे से अलग नही बल्कि एक सिक्के के दो पहलू के रूप में माने गये है, जो एक दुसरे के बिना अधूरे है।

### कर्म से ज्ञान की प्राप्ति

कर्म योग को ज्ञान योग का आधार शिला माना गया है। योगवसिष्ठ के अनुसार जब भी कोई मनुष्य किसी कार्य को निष्काम भावना से करता है, तो चित की शुधि होती है। चित शुधि के बाद मन ज्ञान योग के के लिय पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है। महर्षि वसिष्ठ कहते है कि

**इह हीन्दोरिवोदेति शीतलाह्लादनं हृदि । परिस्पन्दफलप्राप्तौ पौरुषादेव नान्यतः ॥2/4/9॥**

**अर्थात** शास्त्रविहित, कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मों से चित्त को शुद्ध कर अतिपुरुषार्थ से ज्ञान-की प्राप्ति कर लेने पर, चन्द्रमा के समान शीतल, सब आनन्दों से बढ़कर ब्रह्मानन्द का उद्भव हृदय में होता है।"(वाल्मीकि, 1985, मुमुक्षुत्व प्रकरण, सर्ग 11, पृ. 121) गीता में श्री कृष्ण निष्काम कर्म का वर्णन करते हुए कहते है, कि

**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ 4/38 ॥ (Bhaktivedanta Swami Prabhupada, 1972, p. 196)**

**अर्थात** इस सम्पूर्ण जगत में ज्ञान के जैसा कुछ पवित्र नही है। कर्म योग के माध्यम से जब कोई मनुष्य सिद्ध होता है, तो समय बीतने के साथ-साथ वह भी अपने अन्दर उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। शंकराचार्य जी ईशावास्योपनिषद में वर्णन करते हुए कहते है कि

**विद्या चाविद्या च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥(ईशा० उप०,मंत्र-11,प०-36)**

**अर्थात** जब कोई मनुष्य विद्या(ज्ञान) और अविद्या(कर्म) दोनों का सत्य ज्ञान रखता है। तो वह कर्म के माध्यम से संसार के सभी बंधनों और जीवन के जितने भी समस्याएँ उनका क्षय करता है तथा ज्ञान के माध्यम से आत्मतत्व को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप करता है।

## *ज्ञान से निष्काम कर्म की उत्पत्ति*

योगवसिष्ठ मुख्य रूप से ज्ञान योग पर आधारित ग्रंथ बताया गया है। इसमें ज्ञान एवं कर्म के बिच बहुत ही गूढ़ संबंध बताया गया है। योगवसिष्ठ में ज्ञान योग के माध्यम से कर्म योग का जड़(वासना) को पूर्ण रूप से समाप्त करने वाला बताया गया है। कर्म से वासना समाप्त हो जाने के बाद निष्काम कर्म की उत्पत्ति स्वयं ही हो जाती है। महर्षि वसिष्ठ कहते है कि ज्ञान हो जाने पर प्राणी कर्मों में आसक्त नहीं होता, वह कर्म करता हुआ भी वैसे ही रहता है, मानो उसने कोई कार्य नहीं किया।"(वाल्मीकि, 1985, निर्वान(उतरार्ध) प्रकरण, सर्ग 2, पृ.9) गीता में श्री कृष्ण ज्ञान से निष्काम कर्म का वर्णन करते हुए कहते है कि

**यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ गीता4.37**

**(Bhaktivedanta Swami Prabhupada, 1972, p. 196)**

**अर्थात** जिस प्रकार जलती हुई अग्नि लकडियो को जलाकर समाप्त कर देती है, ठीक उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि मनुष्य के सभी प्रकार के कर्म से उत्पन्न होने वाली बन्धनों को समाप्त कर देती है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि कर्म से ज्ञान योग और ज्ञान से निष्काम कर्म प्राप्ति होती है।

# निष्कर्ष-

योगवसिष्ठ के अनुसार ज्ञानी साधक के लिय कर्म योग एवं ज्ञान योग एक दुसरे अलग नही बल्कि पूरक है। कर्म योग में जहाँ निष्काम कर्म के द्वारा चित को शुद्ध कर, जो ज्ञान योग मुख्य आधार बनती है। वहीं ज्ञान योग में विवेक-वैराग्य के माध्यम से साधक के मन में आत्म तत्व का बोध के पश्चात निष्काम कर्म के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार यह एक दुसरे के पूरक है। योगवसिष्ठ के उदाहरनों के अनुसार जैसे पानी और उसकी द्रव्यता, आकाश और उसकी दिशाएं अलग नही है, ठीक उसी प्रकार कर्म योग एवं ज्ञान योग एक ही तत्व के दो रूप है। जहाँ कर्म योग के द्वारा मन को शुद्ध किया जाता है, वहीँ ज्ञान योग के द्वारा अज्ञान को समाप्त कर मन को आत्म ज्ञान के लिय तैयार किया जाता है।

# सन्दर्भ ग्रंथ सूची

[1] त्रिवेदी, इ. (2024). *योग शास्त्र-संग्रह.* चौखम्बा शुभारती प्रकाशन।

[2] वाल्मीकि. (1985). *श्रीमद् योगवसिष्ठ महाग्रंथ.* चौखम्भा संस्कृत सीरीज।

[3] गर्दे, ल. ना. (1912). *सरल गीता.* ग्रंथ प्रकाशक समिति।

[4] मेहता, च. रा. (1983). *कर्म बंधन और मुक्ति की प्रक्रिया.*

[5] गीता प्रेस. (2010). *ईशादी नौ उपनिषद.* गीता प्रेस।

[6] आत्मानन्द मुनि, स्वामी. (2000). *गीता दर्पण.* आनंद कुटीर ट्रस्ट।

[7] Bhaktivedanta Swami Prabhupada, A. C. (1972). *Bhagavad-gītā as it is*. Bhaktivedanta Book Trust.

[8] गोयन्दका, ह. कृ. (1931). *योग दर्शन.* गीता प्रेस।

[9] अत्रे, भी. ला. (1957). *योग वशिष्ठ और उसके सिद्धांत.* तारा प्रिंटिंग वर्क्स।

[10] वाल्मीकि. (1985). *श्रीमद् योगवसिष्ठ महाग्रंथ.* चौखम्भा संस्कृत सीरीज।

[11] राजाराम, पं. (2000). *आर्ष-ग्रंथावली: बृहदारण्यक उपनिषद.* वोम्बे मशीन प्रेस।